

आलोचनात्मक चिन्तन

शैरॉन बेलिन एवं हार्वे सीगल

लेखक परिचय :

शैरॉन बेलिन : फिलॉसोफी ऑफ एज्युकेशन में पीएच. डी. के बाद सीमोन फ्रेसर यूनीवर्सिटी, ब्रिटिश कोलंबिया, कनाडा में सृजनात्मकता, कला और नाट्य शिक्षा की प्रोफेसर।

हार्वे सीगल : मियामी यूनीवर्सिटी में शिक्षा दर्शन के प्रोफेसर।

संपर्क : P.O. Box 248054
Coral Gables, FL 33124-4670
(305)284-5411
email: hsiigel@miami.edu

बहुत से शिक्षा दार्शनिक आलोचनात्मक चिन्तन को शिक्षा के केन्द्रीय उद्देश्य के रूप में स्वीकार करते हैं। यह सवाल महत्वपूर्ण हो जाता है कि आलोचनात्मक चिन्तन के मायने क्या हैं और शिक्षा में क्यों जरूरी है ?

आलोचनात्मक चिन्तन के पैरोकार दार्शनिक मानते हैं कि इससे विद्यार्थी में तर्क करने की बेहतर क्षमता का विकास होगा और वे अपने विश्वासों, निर्णयों और कर्मों पर विचार करने एवं उनका मूल्यांकन करने में सक्षम बनेंगे।

यह लेख आलोचनात्मक चिन्तन के मायने और शिक्षा में इसकी जरूरत पर केन्द्रित है। लेखक द्वय शिक्षा में आलोचनात्मक चिन्तन की जरूरत को महत्वपूर्ण मानते हुए तर्क देते हैं कि यदि हम बच्चों को व्यक्ति के तौर पर मानते हैं तो उन्हें खुद के बारे में सही प्रकार से सोचने एवं निर्णय लेने में सक्षम बनाया जाना चाहिए और यदि हम मानते हैं कि वे बड़े होकर अपने निर्णय खुद करें तो इसके लिए भी उनमें आलोचनात्मक चिन्तन की क्षमता विकसित करने की जरूरत है।

सबसे पहली बात यह कि आलोचनात्मक चिन्तन अच्छे चिन्तन की एक किस्म है, क्योंकि आलोचनात्मक चिन्तन अगर पर्याप्त मात्रा में हो तो वह अपने अच्छे और बेहतर होने को जाहिर कर देता है। हम आलोचनात्मक चिन्तन के इस मानक स्वरूप पर जोर देते हुए अपनी बात शुरू करेंगे। इस बात पर जोर देने से हमारी अवधारणा खासतौर पर दार्शनिक अवधारणा, उन मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं से अलग हो जाती है जो लाजमी तौर पर विवरणात्मक हैं और मानती हैं कि मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएं, पद्धतियां और क्षमताएं इस आलोचनात्मक चिन्तन के केन्द्रीय तत्व हैं। इस तरह की प्रक्रिया में कुछ दिक्कतें हैं- (1) यह तय करना मुश्किल है कि कोई निश्चित आलोचनात्मक चिन्तन किसी निश्चित मानसिक क्रिया से संबद्ध होता है। (2) ऐसी कोई निश्चित पद्धति नहीं है जो आलोचनात्मक चिन्तन के लिए जरूरी या पर्याप्त हो और (3) वर्गीकरण, अवलोकन, परिकल्पना गढ़ना आदि पद जो चिन्तन को इंगित करते हैं, वे किसी मानसिक क्रिया या प्रक्रिया पर नहीं बल्कि उन कार्यों पर निर्भर करते हैं जो चिन्तन के लिए जरूरी हैं। (बेलिन, 1998)

समकालीन मनोवैज्ञानिक व्याख्याओं के बरअक्स आलोचनात्मक चिन्तन के दार्शनिक सिद्धान्तकार इस बात पर समहत हैं कि यह विचार अपरिहार्य रूप से मानदण्ड आधारित है। आलोचनात्मक होने को चिन्तन का एक गुण बताने के पीछे यह भाव रहता है कि यह सहज रूप से स्वीकार्य होगा और इसलिए इसे अच्छा माना जाए। आलोचनात्मक चिन्तन की वर्तमान दार्शनिक व्याख्याओं में इस तरह के मानदण्डों पर जोर दिया गया है। मिसाल के तौर पर रॉबर्ट एच. इनिस का मानना

है कि आलोचनात्मक चिन्तन दरअसल 'संतुलित विचारात्मक चिन्तन है जो हमें यह तय करने में मदद करता है कि क्या विश्वास करने के काबिल है और क्या किया जाए।' (इनिस्, 1987 पृ. 10) और वे विस्तार में बताते हैं कि कौन-सी क्षमताएं, कौशल और प्रवृत्तियां हैं जो चिन्तन (और चिन्तक) में झलक ही जाती हैं अगर वह अलोचनात्मक है तो। सीगल के अनुसार आलोचनात्मक चिन्तक वह है जो तर्क का उचित प्रयोग करता है और वे जोर देते हैं कि तर्क ज्ञानमीमांसा के आधार पर परखा हुआ और अच्छा होना चाहिए। तर्क ऐसा होना चाहिए जो मान्यताओं, दावों और क्रियाओं के आधार बता सके। इसी तरह रिचर्ड पॉल के अनुसार क्षमताओं और प्रवृत्तियों के रूप में आलोचनात्मक चिन्तन का अर्थ है कि मान्यताओं, उससे जुड़ी धारणाओं और विश्व दृष्टि का विवेचनात्मक मूल्यांकन किया जाए। मैथ्यु लिपमैन के अनुसार आलोचनात्मक चिन्तन वह चिन्तन है जो निर्णय लेने में मदद करता है क्योंकि ये ऐसे मानदण्डों पर आधारित होते हैं जो खुद दुरुस्त होते रहते हैं और संदर्भ के प्रति संवेदनशील होते हैं। (लिपमैन, 1991)

जॉन मेक्पेक सहित अन्य लेखकों ने भी इस अवधारणा के विवरणात्मक पहलू पर ही जोर दिया है हालांकि इन लेखकों की आलोचनात्मक चिन्तन के बारे में समझदारी में कई फर्क हैं और सब अलग-अलग बातों पर जोर देते हैं फिर भी सभी इस अवधारणा के विवरणात्मक होने को स्वीकार करते हैं।

शुरु में आलोचनात्मक चिन्तन को लेकर लोगों का विचार था कि यह एक खास कौशल है और इस दौर के अधिकांश दार्शनिक मुबाहिसों में आलोचनात्मक चिन्तन को कौशल या क्षमता और प्रवृत्ति माना गया। मिसाल के तौर पर इनिस् की शुरुआती परिभाषा थी कि आलोचनात्मक चिन्तन 'कथनों को ठीक तरह से आंकना है' (इनिस्, 1963, पृ. 83) इसके बारे में प्रायः सभी दार्शनिक विमर्शों में माना जाता है कि आलोचनात्मक चिन्तन कौशल अथवा क्षमताओं और मनोवृत्ति, दोनों को, समाहित किए हुए है, हम इस सहचर्य पर आगे बात करेंगे।

आलोचनात्मक चिन्तन: कौशल/ क्षमता और धारणाएं

अधिकांश दार्शनिक हवालों में आलोचनात्मक चिन्तन के दो संबद्ध लेकिन अवधारणात्मक रूप से भिन्न पहलू अथवा आयाम बताए गए हैं: तर्क करने की बेहतर क्षमता और ऐसा करने की प्रवृत्ति। इसके बारे में हम क्रम से बात करेंगे।

कौशल/ क्षमता

चिन्तन उसी सीमा तक आलोचनात्मक रह सकता है जहां

तक ये ध्यान आकर्षित करे और जहां तक तर्क की प्रमाण-परकता अक्षुण्ण रहे (तर्क की यह अक्षुण्णता उस स्तर से निर्धारित होती है जहां पर तर्क उस ज्ञानमीमांसीय मानक से जुड़ता हो जिसके बारे में ऊपर बताया गया है।) इस दृष्टि से आलोचनात्मक चिन्तन- जैसा कि हमने कहीं अन्य जगह पर भी बताया है- बुद्धिवाद का शैक्षिक सहार्थी है क्योंकि बौद्धिक चिन्तन और आलोचनात्मक चिन्तन, दोनों ही, कारण के बगैर संभव नहीं। विश्वास, निर्णय और कार्य, तभी तक तार्किक हैं जब तक कर्ता के पास अपने विश्वास, निर्णय और कर्म के लिए पर्याप्त कारण हैं। तो कह सकते हैं कि आलोचनात्मक चिन्तन के लिए कारण के उम्दा होने का पता लगाना जरूरी है। इस तरह से आलोचनात्मक चिन्तन सिखाने के लिए सबसे जरूरी काम छात्रों में कारण/तर्क की प्रमाण-परक ताकत को जांचने की क्षमता को प्रोत्साहन दिया जाए।

स्वाभाविक तौर पर इससे कई सवाल उठते हैं जिसमें कई ज्ञानमीमांसीय सवाल हैं। एक यह कि वे कौन से मानक होंगे जिनके आधार पर कारण/ तर्क के उम्दापन को परखा जाए? ये मानक कैसे चुने जाएं? और इन्हें चुनेगा कौन? और वे (मानक) अपने आप को सही कैसे ठहराएंगे? और क्या उन्हें सिद्धांततः (ऐसे तरीके से जो न तो एक वृत्तीय हो और न ही सवाल पैदा करने वाला हो) ठीक माना जा सकता है? इन मानकों का ज्ञानमीमांसीय आधार क्या है? क्या वे निरपेक्ष हैं या सापेक्ष? क्या वे वास्तव में ही ज्ञानमीमांसीय हैं या राजनैतिक हैं जो सत्ता और दमन के लिए औजार के रूप में प्रयुक्त होते हैं? इसी तरह के और भी कई प्रश्न हो सकते हैं। हम दोनों ने ही किसी अन्य जगह पर इस बात पर विस्तार से विचार किया है और इस लेख में भी कई जगह इनमें से कई मुद्दों पर हम बात करेंगे। इस बिन्दु पर एक सवाल यह हो सकता है कि किस हद तक इस तरह के मानकों (और आलोचनात्मक चिन्तन) का सामान्यीकरण किया जा सकता है? और क्या संदर्भ के बदलने पर ये मानक बदल जाएंगे या सभी संदर्भों में समान बने रहेंगे? इस मुद्दे पर आलोचनात्मक चिन्तन के सिद्धान्तकारों में जबरदस्त भेद है। इस पर हम आगे बात करेंगे।

मनोवृत्ति

विश्वास करने, किसी निर्णय पर पहुंचने या किसी काम को करने के लिए तर्क/कारण के उम्दापन या उसकी प्रमाणक क्षमता को तय करना जरूरी हो सकता है, पर आलोचनात्मक चिन्तन के लिए यही पर्याप्त नहीं है, क्योंकि हो सकता है कि तर्क को प्रयुक्त करने वाले (चिन्तक) में ऐसा करने की क्षमता हो लेकिन वह इसका

प्रयोग न करे। इसी तरह से आलोचनात्मक चिन्तन के अधिकांश सिद्धान्तकार यह तर्क भी करते हैं कि आलोचनात्मक चिन्तन करने वाले के लिए जरूरी है कि उसमें तर्क की प्रमाणक क्षमता का अंदाज लगाने की क्षमता या कौशल हो, लेकिन ये भी जरूरी है कि उसकी कुछ मनोवृत्तियां भी हों। एक मूलभूत धारणा तो यही है कि आलोचनात्मक चिन्तन करने वाले को उम्दा तर्क को पहचानने और बेहतर तर्क को खोजने की क्षमता हो और उसके विश्वास और कार्यों को इस आधार पर परखा जा सके। साथ ही कई सिद्धान्तकार आलोचनात्मक चिन्तन के लिए इन मनोवृत्तियों के कुछ अन्य जरूरी उपसमूहों की भी बात करते हैं। उदाहरण के लिए खुले, ईमानदार और आजाद दिमाग की जरूरत, एक छानबीन करने की मनोवृत्ति और बातचीत के दौरान अपने समूह के अन्य लोगों के प्रति सम्मान की भावना। आमतौर पर अधिकांश सिद्धान्तकारों ने आलोचनात्मक चिन्तन के 'दो अवयवों' पर जोर दिया है जिसमें एक है तर्क को आंकने की क्षमता और दूसरे कुछ मनोवृत्तियों की जरूरत।

‘कौशल कहे जाने’ की समस्याएं

कुछ सिद्धान्तकार आलोचनात्मक चिन्तन की अवधारणा के संबंध में पद के प्रयोग की आलोचना इस आधार पर करते हैं कि जब हम कौशल को संज्ञा के रूप में प्रयुक्त करते हैं तो इसका मतलब है कि हम किसी अन्दरूनी क्षमता की बात कर रहे हैं जो व्यक्ति में मौजूद है। कौशल या क्षमता को एक मानसिक क्रिया के रूप में लेने के नतीजों पर ऊपर बात की जा चुकी है, लेकिन कौशल या क्षमता को खासतौर पर विशेषण या क्रिया विशेषण के रूप में लेने से इसे व्यक्ति की सोच के दायरे से जोड़ा जा सकता है। अगर यह कहा जाए कि जोंस में आलोचनात्मक चिन्तन करने की क्षमता है तो आलोचनात्मक चिन्तन के अधिकांश दार्शनिक सिद्धान्तकारों के लिए इसका अर्थ होगा कि जोंस के चिन्तन में वे क्षमताएं हैं जिसके आधार पर वह आलोचनात्मक चिन्तन कर सकती है, न कि उसमें कोई इस प्रकार की आंतरिक व्यवस्था है। इस तरह से कहा जा सकता है कि 'आलोचनात्मक चिन्तन कौशल' की बात भ्रामक और गुमराह करने वाली है खासतौर पर तब, जब इसके सामान्यीकरण की बात की जा रही हो। इसके बारे में आगे बात की जा रही है। इन पंक्तियों के लेखक इस बात से सहमत नहीं हैं कि भ्रम पैदा करने वाली बात दार्शनिक रूप से किस हद तक परेशानी पैदा करने वाली है। शैरोन बेलिन 'कौशल' को संज्ञा से अलगकर देखना तजवीज करेंगी जबकि सीगल के लिए 'आलोचनात्मक चिन्तन कौशल' की बात करना तब तक ठीक है जब तक इस बात का आशय यह लिया जाए कि चिन्तन में वह कुशलता है जो जरूरत के सभी मापदण्ड पूरे करती है। इस प्रकार आलोचनात्मक चिन्तक

वह है जिसमें ये दोनों चीजें- 'कौशल' और उपरोक्त वर्णित 'मनोवृत्तियां'- मौजूद हों। आगे हम 'कौशल' का इसी अर्थ में उपयोग करेंगे।

आलोचनात्मक चिन्तन और सामान्यीकरण की समस्या

संभवतः आलोचनात्मक चिन्तन की सबसे बड़ी मुश्किल यही है कि इसे समझा कैसे जाए ? एक सामान्य चीज के रूप में या एक ऐसे क्षेत्र, अनुशासन या संदर्भ-केंद्रित माना जाए ? बहुत से लोग यह मानते हैं कि आलोचनात्मक चिन्तन सामान्य कौशलों, क्षमताओं और मनोवृत्तियों का समूह है और इनको किसी भी संदर्भ या परिस्थिति में लागू किया जा सकता है। इस सामान्यत्व के दृष्टिकोण से, सवाल उठाने के लिए प्रेरित करने जैसे सामान्य विभ्रमों को चिन्हित करने की क्षमता को महत्त्व देना वाजिब होगा। इस दृष्टि से सामान्य रूप से एक आलोचनात्मक चिन्तक को तर्कदोषों को- बिना संदर्भ के भी- पहचानने में सक्षम होना चाहिए। इसी तरह की बातें अन्य क्षमताओं के बारे में भी की जा सकती हैं।

इसके विपरीत, विशिष्ट दृष्टिकोण इस तरह की किसी भी सामान्य क्षमता को नकारता है। इस दृष्टिकोण की वकालत करने वालों में एक प्रमुख विचारक जॉन मेक्पेक के अनुसार आलोचनात्मक चिन्तन ऐसी कोई क्षमता या कौशल नहीं हो सकता जिसे सामान्य रूप से सभी विषयों, सभी क्षेत्रों पर लागू किया जा सके, क्योंकि चिन्तन स्वयं ही किसी न किसी विषय या संदर्भ से बंधा होता है। उनका मानना है- 'चिन्तन का अर्थ ही किसी चीज के बारे में चिन्तन करना होता है। बिना किसी चीज के चिन्तन करना सैद्धान्तिक रूप से असंभव है।' आलोचनात्मक चिन्तन को सामान्य कौशल मानते हुए छात्रों में आलोचनात्मक चिन्तन को सामान्य रूप में बढ़ाने के लिए पाठ्यक्रम तैयार करना एक बड़ी गलती है।

किसी विषय से परे हटकर देखें तो 'आलोचनात्मक चिन्तन' नामी पद किसी खास क्षमता/कौशल की ओर इंगित नहीं करता है और इस तरह से यह कोई पृथक विषय नहीं है जिसका अध्यापन किया जा सके। और आलोचनात्मक चिन्तन किसी ऐन विषय 'अ' के बारे में भी नहीं है। यह बात (कि आलोचनात्मक चिन्तन एक विषय है) अवधारणात्मक और व्यावहारिक तौर पर एकदम निराधार है।

मेक्पेक के इस दृष्टिकोण की वकालत करने वाले बहुतेरे हैं। फिर भी इसकी काफी आलोचना हुई है। हमारी राय में एक आम आलोचना तो यही है कि किसी ऐन वक्त पर चिन्तन किसी खास संदर्भ में ही होता है और ऐसा ही किसी खास चीज के बारे में भी कहा जा सकता है। इसका मतलब यह नहीं हुआ कि चिन्तन की क्रिया के बारे में कुछ भी सामान्य तौर पर कहा ही नहीं जा सकता।

चिन्तन की क्रिया को एक सामान्य क्रिया के रूप में भी लिया जा सकता है और कहा जा सकता है कि चिन्तन की सभी घटनाएं उसके (अलग-अलग) उदाहरण हैं। चिन्तन की कोई खास घटना में हमेशा ही कोई खास मुद्दा होगा, लेकिन इस बात का चिन्तन को सामान्य कौशल / क्षमता मानने से कोई विरोधाभास नहीं है क्योंकि ये कौशल या क्षमता को किसी भी विषय या क्षेत्र में लागू किया जा सकता है।

दूसरी बात जो मेक्पेक कहते हैं वह आलोचनात्मक चिन्तन में संदर्भ या क्षेत्र की मौजूदगी या किसी खास विषय के ज्ञान के बारे में है। हमारी राय में, मेक्पेक कहते हैं कि आलोचनात्मक चिन्तन के लिए यह ज्ञान अक्सर जरूरी होता है। हमें लगता है कि ये बात *विशिष्टत्व* के अनुसार ठीक ही है लेकिन इससे आलोचनात्मक चिन्तन के *सामान्यत्व* को कोई हानि नहीं पहुंचती, बल्कि इस दूसरे मत के अनुसार आलोचनात्मक चिन्तन में विषय संबंधी ज्ञान के लिए पर्याप्त स्थान है। जैसा कि विलियम हेयर- जो आलोचनात्मक चिन्तन के *सामान्यत्व* के पैरोकार हैं- निष्कर्ष रूप में हमें बताते हैं कि छात्रों के आलोचनात्मक चिन्तन को बढ़ाने के किसी शैक्षणिक प्रयास में विषय केंद्रित ज्ञान की खास भूमिका है।

तब हम आलोचनात्मक चिन्तन के सामान्यीकृत होने की बात कैसे कर सकते हैं ? इस बात पर इन पंक्तियों के लेखक कुछ हद तक सहमत हैं। अगर सवाल को तोड़ दिया जाए और कहा जाए कि आलोचनात्मक चिन्तन को अपनी संपूर्णता में भले ही सामान्यीकृत होने लायक न माना जाए लेकिन क्या इसके अलग-अलग अवयवों का सामान्यीकृत होने लायक माना जा सकता है ? इसके जवाब में हमें निम्न उत्तर मिल सकते हैं। एक, तर्क परखने की क्षमता- जो आलोचनात्मक चिन्तन को सामान्यीकृत होने लायक मानने या न मानने की बहस में हमेशा रही है- आंशिक रूप से सामान्यीकृत होने लायक मानी जा सकती है। इस बात पर दोनों *विशिष्टत्व* और *सामान्यत्व* के पैरोकार एकमत हैं। लेकिन इसकी वजहें अलग हैं। *विशिष्टत्व* के पैरोकारों का मानना है कि विषय केन्द्रित ज्ञान अक्सर ही (बेलिन के अनुसार हमेशा ही) आलोचनात्मक चिन्तन के लिए जरूरी होता है और जिन आधारों पर किसी तर्क की पुष्टि की जाती है वे भी क्षेत्र या विषय केन्द्रित ही होते हैं। *सामान्यत्व* के पैरोकारों के अनुसार तर्क की पुष्टि करने वाले कुछ आधार (मिसाल के तौर पर जिन आधारों से तर्क के मान्य या भ्रामक होने की पुष्टि होती है) क्षेत्र या विषय केन्द्रित नहीं बल्कि सामान्य होते हैं और उनको अलग-अलग संदर्भों में किया जाता है। इसके सिवा *आलोचनात्मक चिन्तन की आधारभूत ज्ञानमीमांसा* स्वयं ही पूरी तरह से सामान्यीकृत है। इस ज्ञानमीमांसा के आधार पर ही सापेक्षवाद को नकारा जाता

है, तार्किक औचित्य और सत्य में भेद किया जाता है और तार्किक औचित्य (भले ही सत्य से परे हो) को असफल होले लायक मानने वाली भी यही ज्ञानमीमांसा है। अंततः *आलोचनात्मक* जिसे हम आलोचनात्मक चिन्तक की विभिन्न मनोवृत्तियों, रवियों, आदतों और चारित्रिक विशेषताओं का मिश्रण मानते हैं, वह भी पूर्णतः सामान्यीकृत होने लायक है।

इस लेख के लेखक द्वय का कुछ बिन्दुओं पर मत-वैभिन्न्य है। बेलिन के अनुसार विषय विशेष का ज्ञान आलोचनात्मक चिन्तन में केन्द्रीय होता है। जबकि सीगल जोर देते हैं कि विभिन्न क्षमताओं का सामान्यत्व ही आलोचनात्मक चिन्तन का संघटक होता है (मिसाल के तौर पर तर्क भ्रम को पकड़ने और पहचानने की क्षमता, तर्कों के जायज तरीके और उम्दा तर्कों की पहचान करने की क्षमता) साथ ही तर्क आंकने के विभिन्न मानदण्डों को बहुत सामान्य तौर पर लागू किया जा सकता है। बेलिन मानती हैं कि सामान्यीकरण की इस बहस में ज्यादा जोर कौशल या क्षमताओं पर रहा है। उनका सुझाव है कि इस बहस को फिर से व्यवस्थित किया जाए और उस समझ (बौद्धिक संसाधन) को केन्द्र में रखा जाए जिसके आधार पर किसी संदर्भ में तार्किक निष्कर्ष/ निर्णय लिए जाते हैं। इस आधार पर बहस को अगर व्यवस्थित किया जाए तो सामान्यीकरण के इस मुद्दे में मूल सवाल बदल जाएगा। अभी तक हम बात कर रहे थे कि क्या विभिन्न संदर्भों में किसी खास कौशल या क्षमता को लागू किया जा सकता है ? लेकिन बदली हुई परिस्थिति में अब सवाल होगा कि बौद्धिक संसाधनों का कौन सा समूह या पुंज किसी खास परिस्थिति में, किसी खास चुनौती से निपटने के लिए चाहिए होगा और उस समूह या पुंज को कब-कब इस्तेमाल किया जा सकता है? तब समस्या का रूप बदल जाएगा। फिर हम यह खोजेंगे कि लोक परम्पराओं में अन्वेषण के सिद्धान्तों और मापदण्डों को कब और कहां-कहां लागू किया जा सकता है। तब हम व्यक्तिगत क्षमताओं और कौशल को ज्यादा तवज्जो नहीं देंगे जिसकी वजह से कई समस्याएं खड़ी हुई हैं। सीगल के अनुसार इन समस्याओं को बहुत सतही तरीके से बरता गया है। जैसा कि ऊपर हमने देखा कि क्षमताओं और कौशलों को इस नजरिए से देखा गया है कि वे अगर काम में ली जाएं तो परिणाम कौशलपूर्ण चिन्तन के रूप में सामने आएगा और वह सभी आवश्यक मापदण्डों पर खरा उतरेगा। वह इस मसले में इस बात के लिए भी सजग है कि सभी सिद्धान्त और मापदण्ड स्वयं भी आलोचनात्मक परीक्षण और पुनरावलोकन से परे नहीं हैं। (इस मुद्दे पर हम सहमत हैं) इस तरह से उनके अनुसार आलोचनात्मक चिन्तन सामान्यीकृत होने लायक है और आलोचनात्मक चिन्तन के *सामान्यत्व* का दृष्टिकोण पूरी तौर पर ठीक है लेकिन *विशिष्टत्व* वाले दृष्टिकोण में भी कुछ काम की बातें हैं।

आलोचनात्मक चिन्तन के सामान्यीकरण के इस सवाल को कैसे बरतें, इसको लेकर हममें मतभेद है लेकिन इसके बावजूद हम आलोचनात्मक चिन्तन में विषय विशेष के ज्ञान और 'कुशल चर्चा' की संभावना और उसके अवयवों के सामान्यीकरण को लेकर हममें सहमति है। खास तौर से इस बात पर हमारी सहमति है कि तर्क परीक्षण के तमाम मापदण्डों में से कुछ वाकई बहुत तुच्छ और कुछ वाकई बड़े हैं। हम इस बात पर भी सहमत हैं कि आलोचनात्मक चिन्तन के लिए जरूरी मनोवृत्तियां और मानसिक आदतें तथा आलोचनात्मक चिन्तन की ज्ञानमीमांसा पूरी तरह से सामान्यीकृत होने लायक है। हम इस बात पर भी सहमत हैं कि आलोचनात्मक चिन्तन के सामान्यत्व और विशिष्टत्व दोनों दृष्टिकोण कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं को लेकर सही हैं।

आलोचनात्मक और सृजनात्मक चिन्तन में संबंध

आलोचनात्मक चिन्तन पर होने वाले बहस-मुबाहिषों में एक मुद्दा अक्सर उठता है- कि आलोचनात्मक चिन्तन और सृजनात्मक चिन्तन में क्या संबंध है? इस सवाल का आधार एक पूर्वानुमान बनता है कि ये दोनों अलग-अलग तरह के और विशिष्ट चिन्तन हैं। आलोचनात्मक चिन्तन को ऐन विश्लेषणात्मक और मूल्यांकनपरक माना जाता है जिसमें एक तयशुदा प्रक्रिया से किसी विचार, तर्क या उपलब्धि के बारे में मूल्यांकनपरक निष्कर्ष पर पहुंचते हैं। इसे अपरिहार्य रूप से निःसृजनात्मक मान लिया जाता है क्योंकि इसमें काफी मशीनी अंदाज में नियमों का पालन करते हुए प्रक्रिया चलती है और इसलिए अपनी चौहद्दी से परे नहीं जा पाता और कोई नया विचार नहीं बन पाता। दूसरी ओर सृजनात्मक चिन्तन को उपजाऊ माना जाता है। इस चिन्तन में बने बनाए नियमों को तोड़ने, अपनी सारी हदें पार करने और महान उपलब्धियां हासिल करने की क्षमता होती है। इसे आलोचनात्मक नहीं माना जाता क्योंकि आलोचना तो उपलब्धि मापदण्डों के आधार पर ही संभव है जबकि सृजनात्मक चिन्तन इन मापदण्डों की अवहेलना करता है।

इन दोनों के बीच का संबंध चर्चा का विषय है। कुछ चिन्तक मानते हैं कि आलोचनात्मक चिन्तन और सृजनात्मक चिन्तन अलग-अलग हैं लेकिन एक दूसरे के पूरक भी हैं। जबकि कुछ अन्य का मानना है कि ये एक दूसरे के एकदम विपरीत हैं क्योंकि नए विचारों के सृजन के लिए तर्क और आलोचनात्मक चिन्तन के लिए जरूरी मापदण्डों को परे रखना होता है।

हमारी राय में आलोचनात्मक चिन्तन और सृजनात्मक चिन्तन के बीच इस द्वन्द्व की शुरुआत ही गलत हुई है। नए विचारों या उत्पाद के सृजन में भी मूल्यांकन, विश्लेषण और तार्किकता की

जरूरत होती है और उनकी परख काल्पनिक, रचनात्मक पहलू भी होते हैं। आलोचनात्मक चिन्तन और सृजनात्मक चिन्तन जैसे दो किस्म के चिन्तन मानना वाकई में समस्यापरक है।

पहले इस दावे की जांच करते हैं कि सृजनात्मक चिन्तन ऐन उत्पादक और गैर-मूल्यांकनपरक होता है और नए विचारों तथा उत्पादों का सृजन एक प्रकार के चिन्तन का प्रतिफल होता है और इस प्रक्रिया में तर्क और आलोचनात्मक मूल्यांकन की जरूरत नहीं होती, लेकिन विचारों का सतत सृजन होता रहता है। ये दावा मजबूत है क्योंकि सृजनात्मकता से न केवल उच्च विचार पैदा होते हैं बल्कि ऐसे उत्पाद भी पैदा होते हैं जिनसे नवाचार और उत्पादों को विकसित करने का क्रम चलता है। ऐसे उत्पाद भी पैदा होते हैं जो किसी क्षेत्र विशेष के लिए भी खास होते हैं। विश्लेषण, तर्क और मूल्यांकन इस तरह के रचनात्मक उत्पादों के लिए जरूरी हैं। आलोचनात्मक निर्णय समस्या को पहचानने के लिए, मौजूद समाधानों में औचित्य परखने के लिए बेहद जरूरी हैं। आलोचनात्मक निर्णय इस निर्णय पर पहुंचने के लिए भी जरूरी है कि एक नई दृष्टि की जरूरत है। आलोचनात्मक निर्णय की जरूरत संभव समाधानों पर पहुंचने और उसके लिए शोध के सही रास्ते तलाशने के लिए भी होती है।

ऐसा चिन्तन जो सृजनात्मक परिणाम को पहुंचे, उसे बेलाग उत्पादन की दृष्टि से देखने के बजाय समस्या के अलोचनात्मक और जायज प्रतिउत्तर की दृष्टि से देखना चाहिए।

आलोचनात्मक चिन्तन को ऐन विश्लेषणात्मक, चुनिंदा और नियम आधारित मानने से भी इसी तरह की समस्या आती है। ऐसा चिन्तन जो मूलतः विचारों या उत्पाद की आलोचना की ओर जाता हो, उसमें कोई क्रमबद्धता हो ये जरूरी नहीं है लेकिन उसमें उत्पादनशील और कल्पनाशीलता के तत्व होते हैं। किसी विचार प्रक्रिया पर किन्ही मानदण्डों को मशीनी अंदाज में लागू नहीं किया जा सकता। बल्कि इसमें कुछ प्रक्रियाएं साथ-साथ चलती हैं। इसमें परिस्थितियों की व्याख्या और विभिन्न परिस्थितियों में मानदण्डों के लागू हो पाने की संभावना तलाशने के लिए कल्पनाशील निर्णय लेना शामिल होता है। इसी तरह से आलोचनात्मक चिन्तन की प्रक्रिया में नई परिकल्पना खोजना, नए प्रति-उदाहरण, प्रति-तर्क बनाना और संभाव्य समस्या को देख पाना, इस सब में सृजनात्मकता की जरूरत होती है।

तर्कों की चौहद्दी और कल्पना की सृजनात्मकता दोनों ही गंभीर विचार की सभी स्थितियों के लिए जरूरी हैं। सभी तरह के आलोचनात्मक चिन्तन में एक पहलू सृजनात्मक होता है और कुछ परिस्थितियों में आलोचनात्मक चिन्तन पूर्वधारणाओं पर सवाल

उठाता है, नियम तोड़ता है, मुद्दे को पुनः व्यवस्थित करता है और परिणाम स्वरूप जो कुछ भी प्राप्त होता है उसमें पर्याप्त नवीनता होती है।

आलोचनात्मक चिन्तन और सृजनात्मक चिन्तन के बीच के द्वंद्व को तवज्जो देने वाले यह मानते हैं कि ये दोनों अलग-अलग होते हैं और चिन्तन के भिन्न स्तरों पर घटित होता है। हालांकि वे ये भी मानते हैं कि दोनों में गंभीर और जटिल चिन्तन की जरूरत होती है। वे इसे इस तरह से देखते हैं- एक व्यक्ति पहले समस्या को तार्किक और विश्लेषणपरक दृष्टि से परखता है (इस हिस्से को वे आलोचनात्मक चिन्तन कहते हैं) और उसके बाद आलोचनात्मक निर्णय को स्थगित करके बड़ी संख्या में विचार पैदा करते हैं (इस हिस्से को वे सृजनात्मक चिन्तन कहते हैं) और उसके बाद आलोचनात्मक निर्णय को पुनः सामने लाकर प्रस्तुत समाधान का मूल्यांकन करते हैं। (इस हिस्से को वे पुनः आलोचनात्मक चिन्तन मानते हैं) यहां हमारा तर्क है कि कोई भी चिन्तन को इस तरह से बांटकर नहीं देख सकता; क्योंकि विचार पैदा करने की प्रक्रिया में भी मूल्यांकन मौजूद रहता है और ये समस्या से संबंधित कई मानदण्डों से बंधा रहता है और इसी तरह से प्रभावी और नवीन समाधान बन पाता है। अगर ऐसा न हो तो परिणाम में हमें सृजन के बजाए अव्यवस्था मिलेगी और यह भी संभव नहीं है कि चिन्तन के दौरान कोई ऐसा समय हो जिसमें मूल्यांकन तो हो लेकिन कुछ उत्पन्न न हो। आलोचनात्मक चिन्तन और सृजनात्मक चिन्तन जैसे दो पदों को विश्लेषण और चर्चा के लिए तो माना जा सकता है लेकिन ये स्पष्ट हो जाना चाहिए कि ये कोई दो अलग-अलग तरह के चिन्तन नहीं हैं।

आलोचनात्मक चिन्तन और चिन्तन को इंगित करने वाले अन्य पद

आलोचनात्मक चिन्तन और चिन्तन को इंगित करने वाले पदों के बीच का संबंध भी कम रोचक नहीं है। कुछ चिन्तक आलोचनात्मक चिन्तन और इससे मिलते-जुलते पदों जैसे- *समस्या समाधान*, *निर्णय लेना* और *छानबीन करना* में भेद करते हैं तथा इनका एक पदानुक्रम बनाते हैं और इस तरह से आलोचनात्मक चिन्तन चिन्तन की कई किस्मों में से एक है। हमारी राय में *समस्या समाधान*, *निर्णय लेना* और *छानबीन करना* आदि पद किसी संदर्भ विशेष को इंगित करते हैं जिसमें चिन्तन किया जा रहा है जबकि आलोचनात्मक चिन्तन एक मानक पद है जो इंगित करता है कि उक्त चिन्तन कैसे किया जा रहा है। *समस्या समाधान* पद में किसी खास संदर्भ में या समस्या से जुड़ने पर जोर है। *निर्णय लेने* में चुनाव करने और *छानबीन* में किसी सवाल या मुद्दे की छानबीन का भाव निहित है। इसमें से कोई भी काम आलोचनात्मक या गैर-आलोचनात्मक

तरीके से किया जा सकता है। अगर इन्हें जरूरी मानदण्डों के साथ किया जाता है, तो ये सभी आलोचनात्मक चिन्तन की शर्तों को पूरा करेंगे। इस तरह से आलोचनात्मक चिन्तन कई चिन्तनों में से कोई एक चिन्तन न होकर एक वृहद् पद है जो किसी भी संदर्भ या गतिविधि में चिन्तन की गुणवत्ता को इंगित करता है।

उच्च कोटि के चिन्तन को भी आलोचनात्मक चिन्तन से अलगया जाता है। आमतौर पर *उच्च कोटि के चिन्तन* का अर्थ साधारण, कम परिष्कृत चिन्तन से अधिक उच्च और जटिल चिन्तन से लिया जाता है। ब्लूम के वर्गीकरण- जिसमें चिन्तन की कई कोटियों की बात की गई है- *उच्च कोटि के चिन्तन* के आधारभूत विचार की बात की गई है और बताया गया है कि *उच्च कोटि का चिन्तन* कुछ इस प्रकार चलता है कि जिसके आधार में ज्ञान, फिर समझने, लागू करने, विश्लेषण करने और संश्लेषण से होते हुए अन्त में मूल्यांकन होता है। अन्य लोगों ने जो वर्गीकरण किया है उसमें समझना सबसे नीचे है। उसके बाद याद करना, फिर पहचानना, फिर पुनः स्मरण करना, तुलना करना, वर्गीकरण करना, व्याख्या करना और अन्त में सबसे ऊपर मूल्यांकन है। इस वर्गीकरण में सबसे बड़ी दिक्कत ये है कि इसमें विभिन्न गतिविधियों- जैसे विश्लेषण, मूल्यांकन या व्याख्या को ठीक से लक्षित नहीं किया गया है। ऊपर ये बताया गया है कि ये पद चिन्तन प्रक्रिया को बिल्कुल भी इंगित नहीं करते, बल्कि किन्हीं खास परिणामों को इंगित करते हैं जो किन्हीं निश्चित आलोचनात्मक मानदण्डों के लागू करने से प्राप्त होते हैं और इन पदों में से किसी को भी प्राप्त करने की प्रक्रिया में जो चीजें शामिल होती हैं उनका चरित्र संदर्भ के साथ बदलता है। साथ ही चिन्तन के प्रकारों का पदानुक्रम अपने आप में समस्याप्रद है। मिसाल के तौर पर ज्ञान को अगर समस्याहीन और एकाकी सूचनाओं के ढेर से अधिक मानें तो हम उसे चिन्तन के आधार के बजाय उस तरह का चरम मानना पसंद करेंगे जितना कि किसी बहुत ही जटिल और मुश्किल चीज को समझना। इस तरह से हम कह सकते हैं कि चिन्तन को किसी पदानुक्रम के आधार पर वर्गीकृत करने की कोशिश के बजाय हम आलोचनात्मक चिन्तन के लिए जरूरी आलोचनात्मक मानदण्डों को पहचानने की कोशिश की जाए, भले ही संदर्भ या कर्म कोई भी हो।

आलोचनात्मक चिन्तन और शिक्षा

हमारी दृष्टि में आलोचनात्मक चिन्तन (और तार्किकता भी) शिक्षा का लक्ष्य और आदर्श है। इसलिए शैक्षणिक गतिविधियों को इस तरह से तैयार और कार्यान्वित किया जाए कि तर्क का (जरूरी मानदण्डों के साथ) विकास और मूल्यांकन समूचे शिक्षाक्रम का चरम लक्ष्य बने। इसराइल शेफलर कहते हैं कि आलोचनात्मक

चिन्तन शैक्षणिक गतिविधियों की संकल्पना और संयोजन के लिए पहली जरूरी चीज है। तार्किकता... तर्क का मुद्दा है और इसे शिक्षण का मूलभूत आदर्श बनाने के लिए शिक्षा के सभी क्षेत्रों में जहां तक हो सके तर्क के लिए स्वतंत्र और आलोचनात्मक तलाश को प्रसारित करना चाहिए। इसका मतलब है कि छात्रों में आलोचनात्मक चिन्तन के लिए क्षमताएं और मनोवृत्तियां विकसित करना पहला शैक्षणिक दिशा निर्देश हो और शिक्षा की योजना निर्माण और शिक्षाक्रम को लागू करने में यह केन्द्रीय महत्त्व रखता हो। इसका मतलब यह बिल्कुल भी नहीं है कि शिक्षा के अन्य आदर्श और लक्ष्य कुछ कम महत्त्व के हैं लेकिन सभी शैक्षणिक संस्थानों का पहला महत्त्वपूर्ण काम आलोचनात्मक चिन्तन को बढ़ाने की कोशिश करना है।

आलोचनात्मक चिन्तन को बढ़ावा दिया जाना इतना महत्त्वपूर्ण क्यों माना जा रहा है? सीगल इसके चार कारण बताती हैं। पहला और सबसे जरूरी कारण यह कि अगर छात्रों को एक व्यक्ति के तौर पर देखा जा रहा है तो उनमें आलोचनात्मक चिन्तन को बढ़ावा देना जरूरी है। छात्र को एक व्यक्ति के तौर पर देखने के लिए यह नैतिक रूप से जरूरी है कि हम उन्हें खुद अपने बारे में ठीक से सोचने में सक्षम बनाएं, बजाय इसके कि वे अपने आपको और अपनी खूबियों को नकारें। उनको समान नैतिक मूल्य का मानने के लिए हमें उन्हें स्वतंत्र चेतन के रूप में स्वीकार करना होगा जिनकी अपनी जरूरतें और रुचियां हमसे किसी भी तरह से कमतर नहीं हैं। हमें मानना होगा कि वे कम से कम सैद्धान्तिक तौर पर अपने बारे में निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र हैं कि वे कैसे जिएं और क्या बनें। शिक्षाकर्मी के रूप में अगर हम उनके साथ सम्मान के साथ पेश आते हैं तो वे खुद भी अपने तर्क भी इस तरह के मुद्दों पर सोच सकते हैं (कि वे भी दूसरों के साथ सम्मान से पेश आएंगे)। ऐसा सुचारु रूप से करने के लिए जरूरी है कि आलोचनात्मक चिन्तन को संचालित करने वाले मानदण्डों की समझ हो। परिणामतः छात्रों के साथ सम्मान से पेश आने के लिए उनमें आलोचनात्मक चिन्तन के लिए जरूरी क्षमताएं और मनोवृत्तियां विकसित की जाएं।

आलोचनात्मक चिन्तन को शिक्षा का एक बुनियादी आदर्श मानने के पीछे दूसरा कारण शिक्षा की आम-सी समझी जाने वाली जिम्मेदारी- छात्रों को वयस्क बनाना- है। इसके लिए जो तैयारी चाहिए वह इस तरह से नहीं देखी जानी चाहिए कि छात्रों को पहले से तयशुदा चीजों के लिए तैयार किया जाए, बल्कि छात्रों की अपनी क्षमताओं और दिशाओं को इस तैयारी में शामिल किया जाना

चाहिए। इस क्रम में आलोचनात्मक चिन्तन के लिए जगह प्रकट होती है। आलोचनात्मक चिन्तन को शिक्षा के मुख्य ध्येय के रूप में विकसित करने का तीसरा कारण बुद्धिवादी परम्परा का शिक्षा में केन्द्रीय स्थिति महत्त्व का होना है। गणित, विज्ञान, साहित्य, कला, इतिहास आदि सभी विषयों में बुद्धिवादी परम्परा की स्थिति केन्द्रीय रही है। इन सभी परम्पराओं में आलोचनात्मक चिन्तन शामिल रहा है और ये परम्पराएं आलोचनात्मक चिन्तन पर आधारित भी रही हैं। चौथा कारण लोकतांत्रिक जीवन में सजग विश्लेषण, अच्छा चिन्तन और तर्कपूर्ण बातचीत का महत्त्व होता है। हम लोकतंत्र को जितना ज्यादा महत्त्व देंगे उतना ही ज्यादा महत्त्व हमें आलोचनात्मक चिन्तन के लिए क्षमताओं और मनोवृत्तियों को विकसित करने पर देना होगा। कोई लोकतंत्र उतना ही ज्यादा फले-फूलेगा, जितना ज्यादा उसके नागरिक राजनीतिक मुद्दों और जन-नीतियों के बारे में सोच समझ सकेंगे, मीडिया को नियंत्रित कर सकेंगे और मोटे तौर पर लोकतांत्रिक जीवन की उन शर्तों को पूरा कर सकेंगे। इन शर्तों में अनेक शर्तें आलोचनात्मक चिन्तन की क्षमताओं और मनोवृत्तियों पर ही आधारित हैं।

इन चार कारणों पर देर तक बात की जा सकती है, और की भी जानी चाहिए। लेकिन हमारी राय में आलोचनात्मक चिन्तन को शिक्षा के मूल आदर्श के रूप में स्थापित करने के लिए भी ये चार कारण ही पर्याप्त हैं। आलोचनात्मक चिन्तन को बढ़ावा देने के प्रयास, जैसा कि ऊपर बताया गया है, स्वतंत्र चिन्तन, वैयक्तिक स्वायत्ता और तार्किक निर्णय को विचार और क्रिया के स्तर पर प्रोत्साहन को लक्ष्य करते हैं। ये लक्ष्य वृहत्तर स्तर पर ज्ञान, तर्क आदि को जायज बनाते हैं। मिसाल के तौर पर अगर मानें कि 'सभी ज्ञान अविश्वसनीय हैं' तो तर्क के आधार पर कारण के उम्दापन को वस्तुनिष्ठ तरीके से परखा जा सकता है और कि निजी स्वायत्ता एक महत्त्वपूर्ण मूल्य है। यह ध्येय या लक्ष्य है और इनका वृहत्तर अवधारणात्मक आधार दार्शनिक दृष्टि से विवाद से परे नहीं है। और इसीलिए ये कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि शैक्षिक लक्ष्य के रूप में आलोचनात्मक चिन्तन की भी आलोचना हुई है।

आलोचनात्मक चिन्तन की आलोचना

आलोचनात्मक चिन्तन के बारे में पिछले दिनों में हुई चर्चा में जो बात गौरतलब रही वह यह थी कि इस बहस में आलोचनात्मक चिन्तन के मौजूदा तर्कों को चुनौती दी गई। ये आलोचनाएं उत्तर-आधुनिक और नारीवादी दृष्टिकोण से आरम्भ हुईं और आरोप लगा कि आलोचनात्मक चिन्तन समाज के प्रभुता सम्पन्न वर्ग के मूल्यों और कार्यों को महत्त्व देते हैं और सत्ता में भागीदारी न निभा

सकने वाले वर्गों की अवहेलना करता है। इस आलोचना में यह भी कहा गया कि आलोचनात्मक चिन्तन में अंतःप्रज्ञा के बजाय एकरेखीय तार्किक विचार को तवज्जो दी गई है, यह भी कहा गया कि आलोचनात्मक चिन्तन सहयोगात्मक के बजाय बहुत उग्र और आक्रामक है और आलोचनात्मक चिन्तन भावनाओं को नजरअंदाज करता है और आलोचनात्मक चिन्तन अमूर्त की बात करता है और जीवन के अनुभवों तथा ठोस वास्तविकता को महत्त्व नहीं देता और आलोचनात्मक चिन्तन वैयक्तिक है और वैयक्तिक स्वायत्ता को समुदाय और संबंधों पर तरजीह देता है। यह भी कहा गया कि आलोचनात्मक चिन्तन वस्तुनिष्ठता की संभावनाओं का पूर्वानुमान करता है और इस तरह व्यक्ति की अपनी सांदर्भिक स्थितियों को महत्त्व नहीं देता।

इस तरह की आलोचनाएं वस्तुतः दो तरह की हैं। एक तरह की आलोचना में आलोचनात्मक चिन्तन के सिद्धान्त या व्यवहार के किन्हीं खास बिन्दुओं के लिए चुनौती पेश करते हैं और इसकी बुनियाद को अनछुआ छोड़ देते हैं। इनमें से कुछ आलोचनाओं ने तो आलोचनात्मक चिन्तन में कुछ सुधार की गुंजाइश भी बनाई है। और कुछ आलोचनाएं तो दिशाहीन हैं और उनमें जिन चीजों पर बात की गई है वे आलोचनात्मक चिन्तन के वर्तमान सिद्धान्तों में पहले से ही शामिल हैं, कुछ ऐसी भी हैं जिनमें कुछ उन बातों पर सुझाव दिए गए हैं कि अगर उनको मान लिया जाए तो आलोचनात्मक चिन्तन के कुछ महत्त्वपूर्ण हिस्से छूट जाएंगे। उदाहरण के लिए इस आरोप को लें कि आलोचनात्मक चिन्तन में भावनाओं की अवहेलना होती है। इस आरोप के विपरीत आलोचनात्मक चिन्तन के कई सिद्धान्तकार इस बात को मानते हैं कि आलोचनात्मक चिन्तन में भावनाओं की भूमिका होती है। मिसाल के तौर पर दूसरों की भावनाओं के प्रति संवेदनशील होने के लिए और दूसरों के नजरिए को समझने के लिए हमें भावनाओं की जरूरत पड़ेगी। सीगल के अनुसार तो भावनात्मक पहलू तो आलोचनात्मक चिन्तन के आलोचकत्व का केन्द्रीय तत्व है। ऐनिस ने 'ख्याल रखना' को आलोचनात्मक चिन्तन की मनोवृत्तियों में (नारीवादियों द्वारा आलोचनात्मक चिन्तन की आलोचना के बाद) शामिल किया है। आलोचनात्मक चिन्तन के अधिकांश सिद्धान्तकार इस बात के लिए सचेत करते हैं कि भावनाओं पर बिना आलोचनात्मक मूल्यांकन के विश्वास कर लेना सही नहीं है। आलोचनात्मक चिन्तन के लिए भावनाओं का महत्त्व सम्यक है यानी वे व्यक्ति की तर्क करने और

उस पर अमल करने की क्षमता को बढ़ाए न कि कम करे। इसी तरह की बात आलोचनात्मक चिन्तन पर इस आरोप- कि 'ये बहुत उग्र और आक्रामक होता है और सहयोगात्मकता को नकारता है'- के बारे में कही जा सकती है। हो सकता है कि कभी आलोचनात्मक चिन्तन को बहुत उग्र और आक्रामक तरीके से प्रयोग में लाया गया हो लेकिन इस चिन्तन के सिद्धान्त में यह बात कहीं नहीं कही गई है कि आलोचनात्मक चिन्तन हमेशा ही उग्र और आक्रामक होगा और ऐसा ही समझा जाए। असल में अधिकांश सिद्धान्तकारों ने इस बात की तजवीज की है कि आलोचनात्मक चिन्तन सहयोगात्मक ही हो और तर्क भी दिया है कि सहयोगात्मक तरीके से अगर इसे प्रयोग किया जाए तो इसके ज्यादा व्यापक असर होंगे। हालांकि स्वायत्तता को आलोचनात्मक चिन्तन के केन्द्रीय तत्व के रूप में देखा जाता है लेकिन इससे ये सिद्ध नहीं होता कि संयुक्त और सामुदायिक छानबीन को नजरअंदाज किया गया है।

इस दावे की और जांच होनी चाहिए कि आलोचनात्मक चिन्तन में एकरेखीय तार्किक, निगमनात्मक विचार को अंतःप्रज्ञा से अधिक महत्त्व दिया जाता है। पहले तो यह स्पष्ट होना चाहिए कि निगमनात्मक तर्क पद्धति पर आधारित एकरेखीय तर्क का समीकरण अपने आप में एक समस्यापरक है। निगमनात्मक तर्क पद्धति आलोचनात्मक चिन्तन का एक छोटा समुच्चय है। इस चिन्तन में (कम से कम) आगमनात्मक, संभावनात्मक, सादृश्यता मूलक और अपवर्तित तर्क का प्रयोग भी होता है। इसके साथ ही जैसा कि पहले कहा गया है कि आलोचनात्मक चिन्तन में एक कल्पनात्मक और उत्पादक तत्व भी होता है। इस स्थिति में आलोचनात्मक चिन्तन के सिद्धान्तकार अंतःप्रज्ञा के बजाय तार्किक चिन्तन (ऊपर बताए गए तरीके से प्राप्त) की वकालत यह समझने के लिए करते हैं कि क्या करना चाहिए और किस चीज पर विश्वास किया जाए। और इस स्थिति के बरअक्स मौजूद चुनौती दरअसल आलोचनात्मक चिन्तन का अधिक उग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। अभी आलोचनात्मक चिन्तन की जिन आलोचनाओं की बात की गई है उनमें ऐसी चुनौतियां या सुझाव थे जिन्हें आलोचनात्मक चिन्तन का प्रयोग करने वालों ने चिन्तन की धारणा बनाने में या प्रयोग करते समय इस्तेमाल कर लिया है।

इस तरह की आलोचनाओं की दृष्टि से आलोचनात्मक चिन्तन ज्ञान का 'एक' जरिया है जो समाज के प्रभुता सम्पन्न वर्ग का है लेकिन इसको इस तरह से अधिकृत किया जाता है कि मानो ज्ञान

का यही एक मात्र साधन हो। इसको इस तरह से अधिकृत करने से ज्ञान के अन्य दमित वर्गों के परम्परागत साधन हाशिये पर चले जाते हैं और इसके पक्षपातपूर्ण होने के आरोप लगने लगते हैं। और इस तरह से आलोचनात्मक चिन्तन को कई विचारधाराओं में से एक समझा जाने लगता है। इसके सिद्धान्त और मानदण्ड मनमाने समझे जाते हैं और इसका प्रचार करना सांस्कृतिक वर्चस्व का एक हथकण्डा समझा जाता है। एंड्रिया न्ये का मानना है कि तर्क- जिसमें आलोचनात्मक चिन्तन शामिल है- इंसान का एक अन्वेषण है जिसमें भाषा स्थितियों की संरचना होती है जो इंसानों बीच घटित होती हैं और इसलिए इसमें कई आवाजें अनसुनी रह जाती हैं। लेकिन इसे प्रदर्शित ऐसे किया जाता है मानो ये सार्वभौमिक हो। इस तरह की आलोचना को ज्यादा गहराई तक देखने का प्रयास करती है बजाय उनके जो आलोचनात्मक चिन्तन के किन्हीं खास मुद्दों को या किसी सुझाव पर आधारित होती हैं। न्ये की आलोचना आलोचनात्मक चिन्तन के समूचे उपक्रम और उसकी सार्वभौमिकता के दावे पर ही सवाल उठाती है। अगर इस दावे को स्वीकार किया जाए, तो यह जरूरी हो जाता है कि आलोचनात्मक चिन्तन के पक्षपात को पहचाना जाए और इसी क्रम में अन्य चिन्तनों- मिसाल के तौर पर अंतःप्रज्ञा को समान महत्त्व दिया जाए।

हमें यह दूसरी आलोचना, जो अधिक मूलभूत है, वाकई समस्यापरक लगती है। एक समस्या तो यह है कि आलोचनात्मक चिन्तन पर मनमाने पन का जो आरोप है, वह उसके आलोचनात्मक मानदण्डों और सिद्धान्तों के गलत प्रस्तुतीकरण के कारण है। ये सिद्धान्त किसी वर्गहित के चलते नहीं बने, बल्कि तार्किक छानबीन की परम्परा में इनकी जड़ें जमी हुई हैं और इनका सीधा संबंध उद्देश्य से है। उदाहरण के लिए प्राकृतिक तथ्यों को व्याख्यायित करने, अतीत को समझने और उसकी पुनर्व्याख्या के लिए, कलात्मक चीजों को समझने और बनाने के लिए ये सब किसी एक समूह के नहीं हैं। साथ ही तार्किक छानबीन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह खुद को अपने आप ही जांचती रहती है। इस तरह से ये मानदण्ड अपने आप लगातार आलोचना और चिन्तक के तौर पर हमारे उद्देश्य के अनुरूप बदलते रहते हैं। और परम्पराएं अपने आप में गतिशील, मुक्त और बहुल होती हैं, जिनमें पर्याय के रूप में धाराएं भी होती हैं। इस तरह से छानबीन के आलोचनात्मक तरीके संभावनाएं और वास्तविकता तो प्रस्तुत करते ही हैं और साथ ही नये प्रमाणों, तर्कों और समस्याओं और छानबीन के दौरान ज्ञात सीमाओं के भीतर ही और प्रतिस्पर्धी परम्पराओं द्वारा होने वाली आलोचना के मद्देनजर परम्पराओं में हेर-फेर भी करते हैं। तार्किक छानबीन आलोचना को बढ़ावा देती है और परम्परा की आलोचनाएं आलोच्य परम्परा से परे जाकर उसमें निहित मूल्यों को प्रभावित

करती हैं और तार्किकता को कारण से जोड़ती है। हां, इसका उलट कदापि नहीं हो सकता। आलोचना तार्किकता पर आधारित होती है और स्वयं तार्किकता की आलोचना के दौरान भी तार्किकता पर ही आधारित होती है और इसका कोई विकल्प भी अंततः आलोचनात्मक चिन्तन के सिद्धान्तों और मानदण्डों पर ही परखा जाएगा।

समाहार

हमने आलोचनात्मक चिन्तन का जो ब्यौरा प्रस्तुत किया उसमें उसके मानक रूप पर ज्यादा जोर था। इस ब्यौरे के अनुसार आलोचनात्मक चिन्तन में तर्क की प्रमाणक क्षमता को परखने और ऐसा करने की मनोवृत्तियां शामिल हैं। हमने आलोचनात्मक चिन्तन की बात करते हुए कुछ संभाव्य समस्याएं रखीं और निवेदन किया कि इस तरह की 'कुशल चर्चा' को आलोचनात्मक चिन्तन की किसी आंतरिक क्षमता या प्रक्रिया से अभिहित न किया जाए, बल्कि ये कहा जाए कि यह एक चिन्तन है जो आलोचनात्मक है और ये आवश्यक मानदण्डों की पूर्ति करता है। हमने आलोचनात्मक चिन्तन के सामान्यीकरण के मुश्किल सवाल पर भी बात की और कमोबेश एक अलग दृष्टि प्रस्तुत की। हमने निवेदन किया कि आलोचनात्मक चिन्तन को सृजनात्मक चिन्तन से एकदम भिन्न नहीं माना जाना चाहिए बल्कि विचार सृजन के मूल्यांकनपरक, विश्लेषणात्मक, तार्किक पहलू भी होते हैं और उनको परखने में सृजनात्मक पहलू भी हो सकता है। हमने आलोचनात्मक चिन्तन और चिन्तन को इंगित करने वाले अन्य पदों के बारे में भी बात की और यह समझा कि इन पदों को पदानुक्रम में रख कर देखना कम उपयोगी है बजाय इसके कि इनके मानदण्डों पर जोर देते हुए आलोचनात्मक चिन्तन किया जाए और ये मानदण्ड सभी पदों में निहित हैं। हमने इस बात पर भी विचार किया कि आलोचनात्मक चिन्तन को शिक्षा का केन्द्रीय लक्ष्य मानना उचित ही है और इसके लिए तर्क भी दिए। अंत में हमने आलोचनात्मक चिन्तन की कई आलोचनाओं की भी बात की और सुझाव दिया कि इन आलोचनाओं में से कुछ बातें तो महत्त्व की हैं और कुछ उग्र आलोचनाएं बेकार हैं और खुद आलोचनात्मक चिन्तन पर टिकी हैं।

इसके बाद भी इन मुद्दों पर बहुत कुछ कहा जाना बाकी रह जाता है। लेकिन हम आशा करते हैं कि इस बारे में तफसील से बात हो सकी है कि आलोचनात्मक चिन्तन क्या है और क्या नहीं ? यह क्यों मूल्यवान है और इसे शिक्षा का आधार मूल्य क्यों माना जाना चाहिए ? ♦